खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

।। श्रीः ।।

महर्षि सिद्धनागार्जुन प्रणीत

आश्चर्य्ययोगमाला तन्त्र

★

सुखानन्द मिश्रात्मज, मुरादाबाद निवासी स्वर्गीय

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्रने

तान्त्रिक जनोंके हितार्थ

भाषाटीका किया।

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

॥ श्रीः ॥
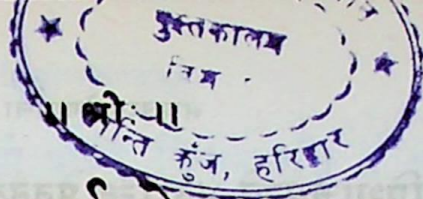
आश्चर्य्ययोगमाला

हिन्दीटीकासमेता प्रारभ्यते ।

विमलमतिकिरणनिकरप्रभिन्नमच्छिष्यकमलसंघाताः ।
सकलभुवनैकदीपा जयन्ति गुरुभास्करा भुवने ॥१॥

भाषार्थ—निर्मल बुद्धिरूप किरणोंसे प्रफुल्लित है कमलरूप सत् शिष्यसमूह जिनका ऐसे, सम्पूर्ण भुवनोंको दीपसदृश प्रकाशके देनेवाले, भास्कर (सूर्य) रूप श्रीगुरुजी त्रिभुवनमें जयको प्राप्त हों ॥ १ ॥

स्पष्टाक्षरपदसूत्रैर्गुरुमतरत्नाकरात्समुद्धृत्य । ग्रथिता परिस्फुरन्ती निगद्यते योगरत्नमालेयम् ॥ २ ॥

भाषार्थ—रत्नाकर (समुद्र) रूप श्रीगुरु महाशयके मतसे निकालकर प्रकाशवती यह योगरत्नमाला प्रकटवर्ण सुप्तिङन्तादि पदरूप सूत्रोंसे ग्रथितकर प्रकाश करी जाती है ॥ २ ॥

सितभानुविटपिमूलं मञ्जिष्ठाभवनचटकमूर्द्धास्रम् । कुष्ठं स्वाङ्गक्षतभवदिग्धैस्त्रिभुवनमेभिर्वशीकुरुते ॥३॥

भाषार्थ—सफेद आकके वृक्षकी जड़, मजीठ, गृहचटकके शिरका रुधिर, कूट इन सबको अपने रुधिरमें मिलाकर गुटिका बना जिस व्यक्तिको खान पानमें दे अवश्य वह व्यक्ति वश्यभावको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

तालं पिशाचभुवने भूतान्हि प्रेतवदनपर्युषितम्। रोगे-न्द्रसंप्रयुक्तं त्रिभुवनवशकारकं तिलकम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ–कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन पुष्य नक्षत्रमें श्मशान में स्थित हो कूट और हरिताल इन दोनों औषधियोंको एकत्रित कर गुटिका बना तिलक करे तो तीनों लोकोंको वश्यभावका पात्र बना सकता है अन्य साधारण मनुष्योंका तो कथनही क्या है ॥ ४ ॥

मृतनरलोचनलोलाललाटहृद्घ्राणसाधितं तैलम् । सकलनराधिपललनावशंकरं शङ्करालये पुष्ये ॥५॥

भाषार्थ–कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन पुष्य नक्षत्रमें श्मशान में स्थित हो मृतक पुरुषके नेत्र, जिह्वा, मस्तक हृदय, नासिका, इनके तेलको सिद्धकर तिलक करें तो राजस्त्रियोंको भी वश करनेमें समर्थ हो अन्य स्त्रियोंकी तो कथाही क्या है ॥५॥

नरतैलं नृकपाले प्रेताम्बरवर्तितः क्षपायां हि । क्षोणीरुहेन्द्रशिखरेसमुज्ज्वाल्यकज्जलंकुर्यात् ॥६॥

भाषार्थ–मनुष्यके तेलको मनुष्यके कपालमें भरकर मृतक पुरुषके वस्त्रकी बत्ती बनाकर कृष्णपक्षकी रात्रिमें अश्वत्थ वृक्षके स्कन्ध (गुद्दा) के ऊपर प्रज्वलित कर कज्जल बना नेत्रोंमें आंजे तो जगत् वश्य होय ॥ ६ ॥

अथ विद्वेषणम्

उरगारिशिरोजनितो धूपवरस्ताम्रचूडशिरसा च। त्रिभु-

वनभवनेषु गतः क्षिप्रं प्रीतिं विनाशयति ॥ ७ ॥

भाषार्थ—कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन मयूर, कुक्कुट इनके शिरकी धूपका जिस किसी व्यक्तिके स्थानमें नामोच्चारण-पूर्वक प्रयोग किया जाय तो निश्चयही अत्यन्त प्रीति क्यों न हो तथापि विद्वेष उत्पन्न होगा ॥ ७ ॥

ऋतुमतिदुर्भगललनाकुसुमगृहे सप्तदिवसपर्युषितैः ।
सितसिद्धार्थैः स्पृष्टस्त्रैलोक्ये को न याति विद्वेषम् ॥८॥

भाषार्थ—ऋतुमती दुर्भगा स्त्रीके कुसुमगृहमें सात दिनतक सिद्ध हुए सर्सोंके स्पर्शमात्रसे, ऐसी कौनसी व्यक्ति है जो विद्वेषको न प्राप्त होगी । अर्थात् सम्पूर्ण विद्वेषको प्राप्त होगी॥८॥

द्विकदिवसभीरुपक्षप्रभवो धूपः प्रयोजितः प्रीतिम् ।
हन्यान्नरेन्द्रमुख्यैः सचराचरजन्तुजातस्य ॥ ९ ॥

भाषार्थ—श्रेष्ठ पुरुषों से प्रयोग की हुई, काक तथा उल्लूके पक्षकी धूप सचराचर जन्तु मात्रकी प्रीतिको तोड-कर विद्वेषको पैदा करती है ॥ ९ ॥

भुजगेंद्रकंचुकोत्थो मयूरपक्षभागसंमिश्रः । धूपः प्रयुक्तमात्रो विद्वेषकरस्त्रिलोकस्य ॥ १० ॥

भाषार्थ—मयूर पक्षको समभाग सर्पकी कंचलीमें मिलाकर प्रयोग करे तो त्रिलोकका भी वश्य होगा ॥ १० ॥

अथोच्चाटनाधिकारः

तुरगखुररंध्रनिहितं नागशिरः कुक्कुटरसनासहितम् ।

भुवनद्वारिनिखातं रिपुमुच्चाटयति सप्ताहे ॥११॥

भाषार्थ—कृष्ण सर्पके शिर तथा कुक्कुटकी सनाको मिश्रि-तकर घोडेके खुरमें बन्दकर शत्रुके दरवाजे पर गाड दे तो सात दिनमें शत्रुका उच्चाटन हो जायगा ॥ ११ ॥

योगान्तरमाह

हलिनीवराहवर्चःशर्वमूर्द्धजदीर्घकन्दरास्थीनि । त्रिभु-वनमपि योगवरः स्फुटमुच्चाटयति सप्ताहे ॥ १२ ॥

भाषार्थ—दूसरा योग और कहा जाता है । कलिहारी शूकर-विष्ठा, मृतककपाल, ऊंटकी हड्डी इन सबको एकत्रित कर पूर्ववत् अश्वके खुरमें बंदकर शत्रुके स्थानपर गाड देवै तो सात दिनमें त्रिभुवन भी उच्चाटनको प्राप्त हो सकेगा सत्रुका तो कहनाही क्या है ॥ १२ ॥

मृतकपुरुषास्थिशंकुर्भवनद्वारे निखन्यते यस्य । तस्य गृहगतविभवं भयंकरं पिशाचभवनाभम् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—मृतक पुरुषकी अस्थि जिस व्यक्तिके गृह द्वारको खोदकर दाब दिया जाय तो उस व्यक्तिका स्वगृह विभव शून्य पिशाच भवन (श्मशान) सदृश अतिभयका प्रतीत होगा १३॥

दण्डकरपुरुषचोदितजवविचलितदीर्घकन्दरारूढम् । सुरगुरुमपि सप्ताहाद्ध्यायन्नुच्चाटयेत् स्थानात् ॥ १४ ॥

भाषार्थ—अब ध्यान योग कहा जाता है । दण्डको हाथमें धारण कर शीघ्र गमन करनेवाले उठाके ऊपर आरूढ पुरुष

का ध्यान करे तो सात दिनमें बृहस्पतिका स्वस्थानसे उच्चाटन करनेमें समर्थ होगा अन्य साधारण मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ।। १४ ।।

उच्चाटनाधिकारसमाप्त ।

अथ दर्पणे रूपदर्शनम्

रक्तहयमारकुसुमं भल्लातकमम्लवेतसमम्र्मीभिः । दर्दुरवसाविमिश्रैस्तेषां रूपाणि पूर्ववत्पश्येत् ॥१५॥

भाषार्थ–दर्पणमें रूप दर्शन प्रकार कहा जाता है । रक्त करवीरके पुष्पको भल्लातक (भेलावां) को, अम्लवेतको दर्दुरकी वसामें मिलाकर शीशेके ऊपर लेपकर देखे तो अश्व, गर्दभ, उष्ट्र इनके स्फुट रूप दिखाई देवैंगे ।। १५ ।।

अंकोलतैलकज्जलसुरभिक्षारैर्दृगञ्जनं पुष्पे । पश्यति दर्पणमध्ये रूपाणि भवान्तरेयानि ॥१६॥

भाषार्थ–अंकोल वृक्षके बीजोंके तेलसे कज्जलको बनाकर गौके घृतमें मिला आंखोंमें आंजकर यदि दर्पणमें देखे तो अपने पूर्व जन्मके सम्पूर्ण स्वरूप दीखेंगे ।। १६ ।।

अंजितनयनो मनुजस्तगरफलमकोलतैलकल्केन । पश्यतिपुरुषंदिव्यंप्रकृतिंतगराञ्जनाद्व्रजति ॥१७॥

भाषार्थ–तगरके फलको अकोलके तेलमें कल्ककर यदि नेत्रोंमें आंजे तो दिव्य पुरुषका दर्शन होगा । यदि परिहार करना है तो केवल तगरके चूर्णको ही नेत्रोंमें आंजे पुनः अपनी पूर्व प्रकृति प्राप्त हो जायगी ।। १७ ।।

अथ चित्ररोदनम्

ललनाजरायुधूपाच्चित्रं भित्तौ प्ररोदति प्रकटम् । पुनरपि गुग्गुलुधूपात्प्रकृतिं निजां व्रजत्याशु ॥१८॥

भाषार्थ–यदि दीवारके ऊपर खिची हुई पुतलीका रोदन देखना अंगीकार हो तो उक्त पुतलीको उक्त स्त्रीके जरायुकी धूप दो अथवा असली हालतमें लाना हो तो सिर्फ गूगलकी धूप दो । तो रोदन बन्द हो अपनी पूर्व दशा प्राप्त हो जायगी ।। १८ ।।

वृषदंशवरपुरंध्र्याजरायुधूपान्न दृश्यते भित्तौ । प्रकृतित्वमेति भूयःकौशिकधूपेन धूपितं चित्रम् ॥१९॥

भाषार्थ–यदि दीवारके ऊपर स्थित पुतलीको बिल्ली तथा श्रेष्ठ स्त्रीके जरायुकी धूप दीजाय तो वह पुतली दीवारके ऊपर न दिखाई देगी किन्तु गुप्त होजायगी । और गूगलकी धूप दी जाय तो फिर पूर्ववत् स्वयं प्रकाश हो जायगी ।।१९।।

करभकपोलस्वेदैर्मूत्रकफैर्भावितेन तालेन । तेन करगर्भलेपाच्चित्राणि समाक्षिपत्याशु ॥ २० ॥

भाषार्थ–हाथीके कपोलका पसीना, मूत्र, कफ इन तीनोंको हरतालमें मिलाकर हाथकी हथेली पर घिसे तो भित्तिगत चित्रके अनेकों रूप दिखाई देवेंगे ।। २० ।।

सरमाजरायुधूपितवेष्टितयुद्धांदिनाहरेद्भ्रमणात् । सव्येनचित्रवर्णप्रभृतीन्यपसव्यतो मोक्षः ॥ २१ ॥

भाषार्थ—शुनीकी जरायुकी धूपमिश्रित प्रज्वलित कर युद्ध के दिन दक्षिण हाथमें स्थापन करके घुमावे तो तत्क्षणमें शत्रुदलके चित्रवर्ण हो जायंगे अर्थात् काष्ठकी पुतलीके समान कुछ कार्य न कर सकेंगे। अथवा इस विषयका परिहार करना हो तो वामहस्तमें धारणकर पूर्ववत् किया करो ॥ २१ ॥

अथ पुरुषान्तर्धानम्

श्रोतःशशांककंटकमधुमधुकप्रथमकुसुमसंयुक्ता । नवह-लिनीकेशरजा गूहति गुटिका त्रिलोहगर्भस्था ॥२२॥

भाषार्थ—श्रोताञ्जन, शशांक, कंटक, सहत, मुरैठी प्रथम रजस्वलाका रक्त, करिहारीका केसर इन सब वस्तुओंको एकत्रित कर गुटिका बनाय त्रिलोहके तहबीजमें बन्दकर गलेमें धारणपूर्वक यदि साध्य व्यक्तिका ध्यान करे तो उक्त व्यक्ति स्वयं प्राप्त हो आलिंगन करेगा ॥ २२ ॥

नीलाशोकभवांकुरमेणकरक्तेनसप्तधाभ्यक्तम् ।
लोहत्रयगर्भगतं गूहति वक्त्रस्थितं जगदशेषम् ॥२३॥

भाषार्थ—नील अशोक वृक्षके अंकुर चूर्णको हिरणके रुधिर में सात भावना देकर त्रिलोह गर्भितकर मुखमें धारण करे तो जगत्मात्रका अन्तर्धान होजायगा पुरुष मात्रका तो कथनही क्या है ॥ २३ ॥

गोरोचनेंगुदीतरुकुसुमं मृतोद्धन्धिनाक्षिरोमाणि । द्विक-भुक्तोच्छिष्टयुता गुटिकेयं कल्पलतिकाख्या ॥ २४ ॥

भाषार्थ—गोरोचन, इंगुवा वृक्षका पुष्प, मार्जारीका अक्षि रोम इन सबको काकोच्छिष्टमें मिलाकर गुटिका बनाय त्रिलोहमें बन्दकर यदि मुखके मध्यमें रक्खी जाय तो पुरुष अदृश्य हो जायगा अर्थात् किसीको न दीखेगा । इस गुटिकाका कल्पलतिका नाम है ।। २४ ।।

पितृवनमर्द्दितमृतुमतिरेतोमनःशिलायुक्तम् । त्रिभुवनमपि विनिगूहति तिलकक्रियया ललाटतले ॥२५॥

भाषार्थ—प्रथम रजस्वला कन्याके रजको मनशिलमें मिलाकर मस्तकमें तिलक किया जाय तो त्रिभुवन मात्र अदृश्य होगा मनुष्य मात्रका तो कथनही क्या है ।। २५ ।।

नीलाशोकोत्तरदिग्वायसनी अंकुरैःकृतस्तिलकः । गूहति रोचनमिलितं मनुजं सचराचरंलोकम् ॥२६॥

भाषार्थ—नील अशोक वृक्षके उत्तर भागमें स्थित काक घोंसले के समीप उत्पन्न हुए अंकुरको चूर्णकर गोरोचनमें मिलाकर मस्तक पर तिलक किया जाय तो चर अचर स्थावर जंगमात्मक सकल लोक अदृश्य होगा । २६ ।।

पारावतस्य कुक्षौस्रोतोऽञ्जनं चितिकानलेन पुटपक्वम् । सिद्धाञ्जनं निगूहति निर्वाणन्तुगेहकोतुरुधिरेण ॥२७॥

भाषार्थ—स्रोताजनको कबूतरकी कुक्षिमें रखकर मृत्तिका पुट लगाय चिताकी अग्निमें पकाकर यदि नेत्रोंमें आंजे तो अदृश्य भाव प्राप्त होगा । अथवा मोक्ष करनेकी इच्छा हो तो

काले बिलावके रुधिरको आंखोंमें आंजे तो मोक्ष होगा । इस का नाम सिद्धांजन है ॥ २७ ॥

नवघतृणांकुरोद्धतमृन्मधुहरितालमिश्रिता पुष्ये ।
सिद्धेभ्योपि निगूहति ललाटतटतिलककरणेन ॥२८॥

भाषार्थ–नवीन मेघ मंण्डलमें उत्पन्न तृणांकु रोंको उखाडकर मृत्तिका, हरिताल, सहत इनमें मिलाय गुटिका बनाकर पुष्य नक्षत्रके दिन यदि ललाट देशमें तिलक किया जाय तो सिद्धोंसे भी अदृश्य रहेगा ॥ २८ ॥

॥ अथ कुतूहलानि ॥

भ्रमरपरिपूर्णगर्भस्तिष्ठति आकाशमण्डले निहितः ।
साराहतांघ्रिपोद्भवशंकुः प्रकटयति विस्मयं लोके ॥२९॥

भाषार्थ–जिसके भीतर भ्रमर व्याप्त हो ऐसी चित्रपर्णीलताके शंकुको यदि आकाश मण्डलमें फेंका जाय तो वह आकाश मण्डलमेंही स्थित रहेगा किन्तु किसी भागमें भी चलायमान न होगा इस कुतूहलके देखने से मनुष्योंको अत्यन्त आश्चर्य्य होगा ॥ २९ ॥

विद्युद्विदग्धपादपशंकुः सरमाजरायुणार्द्रेण । त्रिकटुकयुतेनलिप्तो दशांगुलोवावतिष्ठते व्योम्नि ॥ ३० ॥

भाषार्थ–बिजलीसे दग्ध हुए वृक्षके दशांगुल मात्र शंकु (कीला) को सोंठ, मिर्च, पीपल और तुरतकी ब्याई हुई शुनीकी जरायुसे लिप्तकर यदि आकाशमें फेंकाजाय तो आकाशमेंही बहुत कालतक स्थित रहेगा ॥ ३० ॥

सरमांजरायुनिर्मितपाणिलतामुद्रिकाप्रभावेण ।

आलम्बनिरपेक्षं तिष्ठत्यम्भोरुहं व्योम्नि ॥ ३१ ॥

भाषार्थ–शुनीकी जरायुसे निर्मित अंगूठीको करांगुलिमें पहन कर यदि आकाश मण्डलमें कमल प्रक्षेप किया जाय तो निरालम्ब वह कमल चिरकाल आकाश मण्डलमें स्थिर रहेगा ॥ ३१ ॥

स्तन्धाख्यबीजहोमाद्वितानसंछादितेऽम्बररेवह्नौ ।

चन्द्रोदये प्रयोगाद् दृश्यन्ते शूलपाणयो रुद्राः ॥३२॥

भाषार्थ–वितान रूप आकाश मण्डलसे अच्छादित आगिमें चन्द्रोदयके समय अर्थात् चांदिनी रात्रिमें स्तब्ध (मुंडी) के बीजोंसे यदि हवन किया जाय तो शूलपाणी शिवजी महाराजकी मूर्तियां दीख पडेंगी ॥ ३२ ॥

कुरुसमिदसारदारुणिगन्धमङ्कोलतैलसंलिप्ते । तप्तघृतसूतहवनात् प्रज्वलनं भवति दहनस्य ॥३३॥

भाषार्थ–भटकटैया, ढाककी लकडी और अण्डकी लकडियोंमें अंकोलका तेल लगाकर एक स्थानमें धरदे, फिर गन्धक और पारेकी कजली कर उस कजलीको गरम घीमें मिला उन लकडियोंमें चरुकी भांति डालनेसे स्वयं अग्निदेव प्रगट होकर उस चरुको ग्रहण करेंगे ॥ ३३ ॥

एवंविधेन्धनस्थे गन्धकपाषाणसम्भवो रेणुः । तप्ताज्याहुतिहोमाज्झटिति प्रज्वालयत्यनलम् ॥३४॥

भाषार्थ—इस प्रकारके असार दारुमें गन्धक, भस्म, अंकोल-का तेल, तप्त घृत इनकी आहुति प्रदान करे तो शीघ्रही अग्निदेव स्वयं प्रगट होकर चरुको ग्रहण करेंगे ॥ ३४ ॥

कल्माषिकाविमर्दे वज्रानलदग्धपादपेऽरण्ये ।
ज्वलतिनितान्तंजनितोजलंहवनाद्वैद्युतोवह्निः ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—बिजलीकी आगसे जलेहुए वनके वृक्षके कोयलेको उक्त द्रव्योंसे लिप्तकर असार दारुमें जलसे हवन करें तो बिजली सम्बन्ध वाली अग्नि भले प्रकार प्रज्वलित होगी जलमें ज्वालाका होना इसमें आश्चर्यकी बात है ॥ ३५ ॥

ऋतुमतिललनायोनौ सप्तदिनावासितं क्रमात्सिद्धम् ।
प्रकटयति वह्निमध्ये हवनात्सौवीरकं पुरुषम् ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—सात दिनतक ऋतुमती बनिताके कुसुमगृहमें बसा हुआ स्रोतोऽञ्जन अग्निकुण्डमें हवन करनेसे पुरुष रूपको दिखाता है ॥ ३६ ॥

शशिजजलौकादर्दुरतैलैरेभिः सपाटलामूलैः । चरण-तलसंप्रलेपाद्भ्रमति नरोंऽगारखानिकामध्ये ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—शैवाल, जोंक, मेडक, पाटला, (पाडरका वृक्ष) मूल इन सबको एकत्रित कर तेल पकावे और चरणतलमें उक्त तेलका प्रलेप कर अङ्गारोंकी खानमें क्यों न फिरे किसी प्रकार दग्ध न होगा ॥ ३७ ॥

भेकवसांश्ववाणिक्या जलौकसा चंद्रसंभवैर्युक्ता। कर-चरणसंप्रलेपात्प्रकरोति हि शीतलं वह्निम् ॥३८॥

भाषार्थ—मेंढककी चर्बी, मुण्डी, जोंकका तेल, शैंवाल, इन सब वस्तुओंको एकत्रित कर हाथ पैरोंपर लेपकर अग्निमें भ्रमण करनेसे शरीर न जलेगा किन्तु अग्नि शीतल भावको प्राप्त होगी ॥ ३८ ॥

जाठराग्निस्तम्भमाह

धवलप्लवङ्गमोद्भवरेणुं रुधिरेण रञ्जयेत्तस्य। न पचति वर्षशतैरपि विभावसुः स्तम्भितस्तेन ॥३९॥

भाषार्थ—अब जठराग्नि स्तम्भन कहा जाता है। धवल मेंढक-क चूर्णको धवल मेंढकके रुधिरमें भावना देकर अग्निमें प्रक्षेप करे तो उस अग्निमें पके हुये अन्नका भक्षण करनेवाले मनुष्यके उदरमें उक्त अन्नका कालान्तरमें भी पाक न होगा किन्तु अग्नि स्तम्भन अर्थात् उदरकी अग्निका स्तम्भन होनेसे पाकशक्तिका अभाव हो जायगा ॥ ३९ ॥

तुरगखुररन्ध्रनिहितैर्नलवेतसमूलभाषयवभेकैः । न दहति रोमाण्यपि साधकस्य स्तम्भित एतैः प्रदी-पितोऽप्यनलः ॥ ४० ॥

भाषार्थ—नल, बेंत इन दोनोंकी जड, भाषयव (धान्य विशेष) मेंढक इन सब औषधियोंको घोडेके खुरमें रख कर अग्निमें प्रक्षेप करनेसे प्रदीप्त किया हुआ भी अग्नि साधकके अङ्ग

जलानेमें समर्थ न होगा क्योंकि इन औषधियोंके प्रक्षेप करनेसे अग्निमें स्तम्भन हो जाता है ॥ ४० ॥

जलस्तम्भनम्

प्रक्षिप्य वदनमध्ये दुन्दुभरक्तं प्रविश्य जलमध्ये । निज-भवनाभ्यन्तर इव तिष्ठेदात्मेच्छया धीमान् ॥ ४१ ॥

भाषार्थ–दुमुई सर्पके रुधिरको मुखमें रखकर यदि जलके भीतर प्रवेश किया जाय तो जलका स्तम्भन होय और स्वगृहके तुल्य सुखपूर्वक जलमें स्थित होय अर्थात् किसी प्रकारका भय न हो ॥ ४१ ॥

स्योनाकबीजचूर्णं कृत्वाथारुह्यपादुकायुगलम् । मह्या-मिव सलिलोपरि पर्यटति नरः सुविस्पष्टम् ॥ ४२ ॥

भाषार्थ–अरलु वृक्षके बीजोंका चूर्णकर पादुकाओंपर प्रलेपकर शुष्क कर लेय तत्पश्चात् उक्त पादुकाओंपर चढ़कर यदि जलमें गमन करे तो भूमि गमनके सदृश उक्त जलमें गमन करनेको समर्थ होगा ॥ ४२ ॥

नवनीतरुक्मगैरिकदुर्गन्धामीनतैलकल्केन ।
सकलस्रोतोभङ्गाद्भ्रमति नरोनक्रवत्सलिले ॥ ४३ ॥

भाषार्थ–नैनीघी, सुवर्ण, गेरू, प्याज, इन सबका कल्क बनाकर मछलीके तेलके साथ यदि मुखादि छिद्रोंमें लगाकर जलमें प्रवेश करे तो मनुष्य नक्रवत् अर्थात् नाकेके तुल्य जलमें भ्रमण करनेको समर्थ होगा ॥ ४३ ॥

गोगवलरन्ध्रनिहितैः श्रीफलकामांघ्रिपैः पयःपिष्टैः ।
स्तम्भयति यानपात्रं नावं तद्रंध्रगा गुटिका ॥४४॥

भाषार्थ–अब अन्य कहा जाता है । बिल्वफल, मदनफल (मैंनफल) इनके चूर्णको गौके दूधमें पीसकर गुटिका बनाकर गौके शृङ्ग मध्य छिद्रमें रख देय फिर सात दिनके बाद उक्त गुटिकाको निकालकर यान पात्र अर्थात् नावके छिद्रमें रख देय तो नावका स्तम्भन होगा अर्थात् चल न सकेगी ।। ४४ ।।

पिशाचीकरणम्

हेमवृक्षस्य बीजञ्च घुणचूर्णयुतन्तथा ॥ कोकिलामिषसंयुक्तं प्रेतभावं करोति हि ॥ ४५ ॥

भाषार्थ–धतूरेके बीजोंको घुनचूर्ण तथा कोकिलाके मांसमें मिलाकर गुटिका बनावे तत्पश्चात् उक्त वटिका खान पानमें जिस व्यक्तिको दी जाय तो वह व्यक्ति भक्षण मात्रसेही प्रेत भावको प्राप्त होय । इस प्रयोगका नाम पिशाचीकरण है ।।४५।।

प्रत्यानंयनम्

गुणकांजिकद्रावं च पेयं स्वात्महिताय वै । प्रत्यानयनन्तु देवेशि जायते नाऽत्र संशयः ॥ ४६ ॥

भाषार्थ–यदि इस प्रयोगका उतार करना स्वीकार होय तो गुण और काञ्जिकाका द्राव पान करे हे देवेशि ! तत्क्षणमेंही स्वस्थता प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं ।। ४६ ।।

ब्राह्मणबिडालवानरचण्डालोलूकरोमाणि । पिष्टानि विरमवर्चैरुन्मादकराणि सर्वलोकानाम् ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—ब्राह्मण, बिलाव, बन्दर, चाण्डाल, उलूक, इन सबके रोमोंको मार्जारकी विष्ठामें पीसकर गुटिका बनाय खान पानमें प्रदान करे तो साध्य व्यक्ति उन्मादको प्राप्त होय ।। ४७ ।।

गोमायोर्लांगुलकं द्विकदक्षिणभागपक्षसंयुक्तम् । शयनन्यस्तं जनयति घोरं शत्रोरपस्मारम् ॥४८॥

भाषार्थ—गीदडकी पूँछ, काकका दक्षिण पक्ष, इन दोनोंको एकत्रित कर शत्रुके शयन स्थानमें गुप्त भावसे रख देय तो शत्रुके शरीरमें अपस्मार रोग उत्पन्न होगा ।। ४८ ।।

कनकालमातुलिङ्गैः पारावतकेकिताम्रचूडानाम् । शकृन्मत्तं कुरुते विमदः केशान्तकर्मणा भवति॥४९॥

भाषार्थ—धतूरा, हरताल, बिजौरा इन तीनों औषधियोंको कबूतर, मोर, ताम्रचूड इनकी विष्ठामें पीसकर गोली बना लेय पुनः उक्त गोलीको खान पानमें प्रदान करे तो निश्चय शत्रुको उन्मत्तता प्राप्त होय। अथवा उतार करना स्वीकार होय तो शिरके बालोंको मुंडवा देय स्वस्थता प्राप्त होगी ।। ४९ ।।

लोमशातनम्

हालाहललांगूलं सप्तदिनं कनकतैलपर्युषितम् । शातयति केशनिवहं तथ्यमिदं रोमशातनं प्रवरम्॥५०॥

भाषार्थ—काले सर्पकी पूंछको धतूरेके तेलमें सात दिन तक

भिगोवे तत्पश्चात् लोम स्थानमें लगावे तो स्वयंही लोम कट जायंगे। यह अनुभूत प्रयोग है इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं ॥ ५० ॥

बहुशो वज्रीपयसा भावितितिलतैलमूर्धजाभ्यङ्गात् ।
धवलबलाहकरुचयो भवन्ति केशा विनाभ्यङ्गात् ॥५१॥

भाषार्थ–बहुवार थूहरके दूधमें भावना दिये हुए तिलके तेलको यदि शिरके बालोंमें लगावे तो उक्त केश स्वच्छ मेघ सदृश धवल कान्ति विशिष्ट हो जायगे। परन्तु उक्त तेलको शरीरके बालोंमें न लगावे क्योंकि कुष्ठसदृश श्वेत दागोंके होनेकी सम्भावना है ॥ ५१ ॥

सुधाष्टमभागालयुता जलालोडितानले तप्ता । शातयति केशजालं युक्ता सचराचरे जगति ॥५२॥

भाषार्थ–आठ भाग सहतको एक भाग हरतालमें मिलाकर जलयुक्त कर अग्निमें पकावे तत्पश्चात् केशसमूहमें लगावे तो केशोंका समुदाय स्वयं कट जायगा यह प्रयोग सचराचर सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध है ॥ ५२ ॥

सैन्धवं हरितालं च यवक्षारसमन्वितम् ।
सुधायोगश्च देवेशि रोमहीनं करोति वै ॥५३॥

भाषार्थ–सेंधा निमक, हरताल, यवक्षार, सहत इनको एकत्रित कर गुटिका बनाय लेप करे तो रोग दूर होंय ॥ ५३ ॥

प्रक्षिप्य वदनमध्ये मूलमहिंसोत्तरं सदा सदा समरे ।
न भिनत्ति शास्त्रभङ्गं तूष्णीं संतिष्ठते यावत् ॥५४॥

भाषार्थ–उत्तर भागमें स्थित नीली वृक्षके मूलको यदि मुखमें धारण करे तो शत्रुका प्रेरित किया हुआ शस्त्र अंग छेदन करनेसे किसी प्रकार समर्थ न होगा परन्तु मौन भावसे स्थित रहना योग्य है अन्यथा उक्त शस्त्र अपना प्रभाव दिखाने में समर्थ होगा ॥ ५४ ॥

दिवसकरस्य ग्रहणेऽसितभूतायाञ्च पाटलामूलम् ।
रविवारे पुष्यदिने वदनगतं खड्गवारणं कुरुते ॥५५॥

भाषार्थ–सूर्य्यग्रहणमें पाटला मूलको उखाडकर कृष्ण चतुर्दशी अथवा रविवार या पुष्य नक्षत्रमें यदि मुखमें स्थापन करे तो शत्रुके प्रेरणा किये हुये शस्त्रका स्तम्भन होय अर्थात् अपने शरीरमें किसी प्रकारकी वेदना न होय ॥ ५५ ॥

पर्ण्यप्यनेन विधिना समाहृता वदनमध्यनिक्षिप्ता ॥
समरे शरभरवर्षं निपतन्तं वारयत्याशु ॥५६॥

भाषार्थ–यदि पर्णी भी उक्त विधान पूर्वक उखाडकर उक्त वारादिकोंमें सेवन करी जाय तो संग्राममें कैसी क्यों न शरवर्षा होय सम्पूर्णका निरोध करेगी अर्थात् अपने शरीरमें वेदना न होने देगी ॥ ५६ ॥

योगान्तरम्

अस्तं गच्छति सवितारि शस्त्रस्तम्भनमाकरोति हय-

गन्धः । त्रिदिनानि तेन पीतो विधिवन्माघत्रयो-
दश्याम् ॥ ५७॥

भाषार्थ–माघ कृष्ण त्रयोदशीके दिन सूर्य्यके अस्त समय विधिपूर्वक तीन दिन तक अश्वगन्धका सेवन करे तो शत्रुप्रेरित शस्त्रका स्तम्भन होय ॥ ५७ ॥

दूरदेशान्तरगमनम्

शितभृङ्गकोकिलेक्षणजंघे पुंखाशिफामूलम् ।
कटितटवद्धैरेभिः समीरवन्मेदिनीं भ्रमति ॥५८॥

भाषार्थ–श्वेत भृङ्गराज, श्वेत काकजंघा, श्वेत शरपुंखा, ऐन्द्रीके बीज इन सबको एकत्रित कर कटिमें बांधे तो वायुके तुल्य पृथिवीमें गमन करनेकी शक्ति होय ॥ ५८ ॥

मदनफलं सितजंघाक्षीरं सुरभेस्त्वथैकवर्णायाः । भूर्ज-
त्वक्पदलेपाद्योजनशतकं गतश्रमोगच्छेत् ॥ ५९ ॥

भाषार्थ–मैनफल, श्वेत काकजंघा, एक वर्ण (रंग) वाली गौका दुग्ध, भोजपत्रकी त्वचा, इन सब औषधियोंको एकत्रित कर गौके दुग्धमें पीसकर यदि चरणतलमें लेप करे तो साधक परिश्रम शून्य हो १०० योजन अर्थात् ४०० कोश चलनेको समर्थ होगा ॥ ५९ ॥

कृकलासनक्तमालककंकालसुरेन्द्रगोपशिखिरक्तैः ।
जयति गुटिकार्धयुतं शतत्रयं हेमगर्भस्था ॥ ६० ॥

भाषार्थ–कृकलाश, करञ्जवृक्ष इनके कंकालको सुरेन्द्र गोप

(कृमि विशेष) मयूरका रुधिर इन सम्पूर्ण औषधियोंको एकत्रित कर गुटिका बनावे पुनः विधानपूर्वक सुवर्णमें स्थापन कर धारण करे तो साधक एक दिनमें ३५० योजन गमन करनेमें समर्थ होगा ।। ६० ।।

सितवंशरोचनाहकमूलैश्छागलनवनीतपाचितैः पुष्ये ।
चरणतलसंप्रलेपात्कामितमध्वानमुपयति ॥ ६१ ॥

भाषार्थ–श्वेत वंशरोचनको श्वेत भृङ्गराजके चूर्णमें मिश्रित कर पुष्य नक्षत्रके दिन बकरीके नवनीतमें पकाकर यदि चरणतलमें प्रलेप करे तो साधक इच्छित मार्ग गमन करनेमें समर्थ होय ।। ६१ ।।

अकाले सूर्यग्रहणदर्शनम्

अंकोलतैलयुक्तं शिखिपित्तारुष्करं तथा वीजम् ।
एभिर्दर्पणलेपाद्ग्रहणमकालेऽपि दृश्यते भानोः ॥६२॥

भाषार्थ–अंकोलका तेल, मोरका पित्ता, भिलावा इन तीनों-को एकत्रित कर यदि दर्पण (सीसा) पर लेपकर आकाशमें देखे तो अकालमें भी सूर्य्य ग्रहण नजर आवे ।। ६२ ।।

रविविषये दर्पणतलं विलिप्यते यच्छिखण्डिपित्तेन ।
तद्योजनांतरस्थः पश्यति लोको दिवाकरग्रहणम् ॥६३॥

भाषार्थ–सूर्य्यके सन्मुख स्थित होकर मोरके पित्तसे दर्पणको लिप्तकर योजनान्तरमें आकाशको देखे तो स्फुट सूर्य्यग्रहण नजर आवेगा । धोरेका तो कथनही क्या है ।। ६३ ।।

दिवानक्षत्रदर्शनम्

मुनिवृक्षकुसुमसलिलैः स्रोतोऽञ्जनचूर्णनिर्मितं पुष्ये।
दर्शयति दिवैव यतो नक्षत्रगणं दृगञ्जनं पुंसाम् ॥६४॥

भाषार्थ–टेसूके फूलोंके जलसे स्रोतोंजनके चूंर्णको घिसकर यदि पुष्य नक्षत्रके दिन नेत्रोंमें आंजे तो दिनमेंही स्फुट तारा दखाई देंय ।। ६४ ।।

चन्द्रग्रहणदर्शनम्

दीपमलक्तकवर्त्या करञ्जतैलप्रदग्धया कृत्वा। हरिचर्मणा सुपिहितं विशालमुखभांडमध्यस्थम् ॥ ६५॥

भाषार्थ–रुईकी बत्तीको लाखके रससे भावना देकर करंजके तेलसे फिर भावना देय, तत्पश्चात् उक्त वर्त्तिकासे दीपकको प्रज्वलित कर चौंडे मुखके वर्त्तनमें रख देय, और वानरके चर्मसे पात्रके मुखको मढ़कर जलमें डुबोदे जब तक वह पात्र जलमें डूबा रहेगा तब तक चन्द्रग्रहण नजर[1] आवेगा ।। ६५ ।।

तद्वदनगतं नु तद्वचंद्रज्योत्स्नां विशोषयति । पयसि च मज्जति यावत्तावद्ग्रहणं भवेदिन्दोः ॥६६॥

भाषार्थ–यह श्लोक भी पूर्वोक्त पक्षकोही पुष्ट करता है ६६।।

---

१ इस ग्रंथमें कथित विषय उन्हीं पुरुषोंको फलदायक होंगे जो कि मन्त्र, जप, पुरश्चरण इत्यादि क्रियाओंके ज्ञाता हों गुरु परिपाटीके अनुयायी होंगे ।।

वेशविधानम्

शववदनकुहरसंस्थितश्चिताग्निना दीपितो गुग्गुलुः ।
भूताह्नि नरमशेषं धूपादावेशयत्याशु ॥ ६७ ॥

भाषार्थ–कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन गूगलको मृतकके मुखमें स्थापन करे पुनः चिताकी अग्निसे प्रज्वलित कर धूप देय तो सम्पूर्ण संसार आवेशित होय ॥ ६७ ॥

कनकत्वमातुलानिचित्रवचाकुक्कुटांडसकलानि ।
आवेशयन्ति धूपात्स्पृष्टाः सचराचरं लोकम् ॥६८॥

भाषार्थ–धतूरेके वीज, बिजिया, चीता, वच, कुक्कुटके अण्डेके टुकडे इन सब औषधियोंको एकत्रित कर यदि धूप प्रयोग करे त अवलोकन मात्रसेही सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक लोक आवेशित होय ॥ ६८ ॥

महिषरुधिरसंदिग्धः पञ्चांगः * षोडशांशविषयुक्तः।
कनकविटपोद्भवधूपाद्रात्रौ चेष्टाहरः पुंसाम् ॥६९॥

भाषार्थ–धतूरेका पञ्चाङ्ग, षोडश भाग तेलिया इनको महिषके रुधिरमें भावना देकर शुष्क करलेय पुनः कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन धूपका प्रयोग करे तो सम्पूर्ण पुरुषोंकी चेष्टाका हरण होय ॥ ६९ ॥

विषप्रयोगविधानम्

सिततुरगसारमूलंरवितरुशलभश्च वृश्चिकं चापि ।

---

* जड, पत्ते, छाल, पुष्प, फल, इनको पंचाङ्ग कहते हैं ।

विषसप्तमभागसहितमेभिर्गैनाय दष्टवद्भाति ॥७०॥

भाषार्थ–श्वेत करवीरकी जड, आमके वृक्षके कीट, मैनफल, सात भाग तेलिया, इन सब औषधियोंको एकत्रित कर जलमें पीस नलिकाके ऊपर लेप कर स्थापन कर दे तो जो कोई व्यक्ति उस नलिकाका स्पर्श करेगा वह व्यक्ति सर्पदुष्ट पुरुषके तुल्य उन्मत्त भावको प्राप्त होगा ॥ ७० ॥

दिनकरदुग्धाभ्यक्ता सप्तदिनं वानरी तथा खटिका ।
लिखितःस्पृष्टो विषदस्ताभ्यां भुवि भवति भोगीव ॥७१॥

भाषार्थ–बानर रोम, खडिया मिट्टी इन दोनोंको ७ दिनतक आकके दूधमें भिगोकर एक फलतुल्य बृहद्वटिका बनाकर भूमिमें सर्पाकार रेखा खैंचे तो जो कोई उक्त रेखाका उल्लंघन करेगा वह सर्पके विषमें व्याप्त होगा ॥ ७१ ॥

तद्दिवसजातवत्सकवर्चोभिस्तगरगर्भितागुटिकाम् ।
संभक्ष्य यथाकामं विषं पिबतु शूलपाणिरिव ॥७२॥

भाषार्थ–तुरत के पैदा हुए बछडेके विष्ठेमें तगरके चूर्णको मिश्रित कर गुटिका बनाकर भक्षण करे तो यथेच्छ विषके भक्षण करनेसे भी शरीर नष्ट न हो किन्तु शूलपाणि श्रीशिवजीमहाराजके तुल्य मोदको प्राप्त होय ॥ ७२ ॥

भेकद्विमुखाहिवसाकटुकीश्लेष्मान्तकपादफलानि ।
एभिर्विलिप्तपाणि स्पृष्ट्वा दंशाद्विषं हरति ॥७३॥

भाषार्थ–मेढककी चर्बी, द्विमुखी सर्पकी चर्बी, कुटकी, श्लष्मान्तक बृक्ष (लहसोरेका पेड)के फल इन संबको एकत्रित

कर हस्ततलपै लेपकर जिस व्यक्तिके दष्ट स्थानपर स्पर्श किया जायगा तत्क्षणमेंही साध्य व्यक्तिसे विष उतर जायगा ॥७३॥

गोघृतमहिरिपुरुधिरं द्विमुखाहिपिशितकंकालैः।
प्रलिप्ततूर्यनादस्त्रिभुवनमपि निर्विषं कुरुते ॥७४॥

भाषार्थ–गौका घृत, मयूरका रुधिर, द्विमुखी सर्पका मांस खण्ड इन सबको मिश्रित कर तूर्यके ऊपर प्रलेप कर शब्द करे तो शब्द मात्रके होनेहीसे त्रिभुवन भी निर्विष होगा विष व्याप्तका तो कथनही क्या है ॥ ७४ ॥

अथ विषमज्वरहरणम्

नग्नादि * विधिसमाहृतबालकमूलस्य सप्त शकलानि। क्षपयंति भूतदिवसे चतुर्थकपाणिबन्धाच्च ॥७५॥

भाषार्थ–कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीके दिन नग्नादि विधिपूर्वक ह्राउबेरकी जडको लाकर सात टुकडे करे पुनः कुमारी कन्याके काते हुए डोरेको हलदीमें रंगकर उक्त टुकडोंकी ग्रन्थि बन्धन कर हस्तमें बांध लेय तो चातुर्थिक ज्वर दूर होय ॥७५॥

अथ ग्रहमोक्षोपायः

दिग्वसनादिंसुविधिना गृहीतमसितेह्निनागिनीमूलम्। तक्रेण तस्य पानात्क्षपयति चातुर्थिकं घोरम् ॥७६॥

भाषार्थ–उक्त नग्नादि विधिपूर्वक कृष्ण चतुर्दशीके दिन

---

* मध्याह्नकालमें मुक्त केश होकर शिखामें रक्षा ग्रन्थिको बांधकर षडंगविधिसे रक्षाकर आठों दिकपालोंका आह्वान कर पंचोपचार विधिपूर्वक औषधीका पूजन कर अभिमंत्रण पूर्वक प्रार्थना कर उखेडे इसको नग्नादि विधि कहते हैं ॥

नागिनीमूलको लाकर मट्ठेके साथ पान करे तो घोर चातुर्थिक ज्वर शान्त होय ।। ७६ ।।

ओंकारचक्रहंफट्चक्रं न्यासेन हस्तं विन्यस्य ।
ग्रहमोक्षणं प्रकुरुते मन्त्रोऽयं भूतडामरेसिद्धः ॥७७॥

भावार्थ—ॐ चक्र हंफट् इस डामर सिद्ध मन्त्रको षट्कोणके मध्य तथा प्रतिकोणमें लिख पूजनादि विधानपूर्वक हस्तमें धारण करे तो ग्रहादि वेदनाओंसे मुक्त हो सुख पावे षट्कोण यंत्र अथवा उल्लूके दक्षिण पक्षको कुमारी कन्याके काते हुए डोरेमें बांधकर बाहुमूलमें बांधे तो उक्त फलप्राप्त होय इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं यह तन्त्रोक्त योग है ।। ७७ ।।
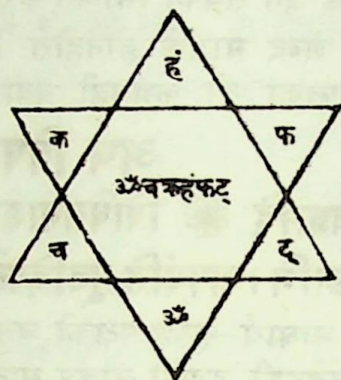
गोगवलविडालशकृत्करिकररुहभुजगकवच शिखि-
चंद्रैः। ग्रहकेतुरयं धूपो दुर्गंधाह्लसुनहिंगुसंयुक्तः॥७८॥

भावार्थ—गौका शृंग, बिलावका विष्ठा, हस्तिका नाखून सर्पकी केंचली, मयूर पक्षके चंदोवे, वच लसुन, हींग, इन सबको कूट पीसकर धूप बनाय ग्रहग्रन्तको देय तो तत्क्षणमें ही ग्रहसे मुक्त हो अर्थात् सम्पूर्ण प्रकारके डाकिनी आदि निर्मित दोष इस धूपके प्रयोगसे शान्त होते हैं ।। ७८ ।।

भूनागांगशिलालैः सर्षपतैलेन मर्दितः कल्कः ।
निशान्धकारबहुले नृविग्रहं ज्वालयत्येषः ॥७९॥

भाषार्थ-गेंसुआ, मैनशिल, हरताल इन तीनों औषधियोंको सर्सोंके तेलमें पीसकर कल्ककर पुनः शरीर पै लेप करे तो साधक रात्रिके अन्धकारमें अग्निके तुल्य प्रकाशको प्राप्त होय ॥ ७९ ॥

खद्योतशक्रगोपकधात्रीषणबीजतैलकल्केन ।
प्रज्वलति विग्रहार्थं रात्रौ यल्लिप्यते किञ्चित् ॥८०॥

भाषार्थ-खद्योत, इन्द्रगोप, आमला, सनके बीजोंका तेल इन सबको मिश्रितकर कल्क बना जिस शरीरादि व्यक्तिपै लेप करे तो वह व्यक्ति रात्रिके समय अग्निके तुल्य प्रकाशको प्राप्त होय खद्योत, इन्द्रगोपक यह दोनों जीव विशेष हैं ८०॥

अथाञ्जनाधिकारः

धूर्तमृगनेत्रचूर्णेनाञ्जितलोचनयुगः क्रमात्पश्येत् । तस्मै भूतानि तदा सिद्धद्रव्यं प्रयच्छन्ति ॥ ८१ ॥

भाषार्थ-गीदड़के दोनों नेत्रोंको पृथक्-पृथक् चूर्णकर दो गुटिका बनावे तत्पश्चात् उक्त बटिकाओंमेंसे दक्षिण नेत्रकी बटिकासे दक्षिण नेत्र और वाम नेत्रकी बटिकासे वाम नेत्र एवं दोनों नेत्रोंकी दोनों बटिकाओंसे पृथक् २ आंजे तो साधक पक्षादिकोंको स्फुट देखनेमें समर्थ और पक्षादिक साधकको देखनेमें समर्थ होय ॥ ८१ ॥

पटहः प्रदीपगर्भस्तनुतरहरिचर्मणा कृताच्छदनः ।
ग्रहमध्यगः क्षपायां चन्द्रज्योत्स्नां विशेषयति ॥८२॥

भाषार्थ–पटह (नगाड़ा) के मध्यमें प्रज्वलित दीपको रखकर पतली बन्दरकी खालसे मढ़कर ग्रहमध्यमें स्थापन कर देय तो चन्द्र चांदनीकी वृद्धि होय ॥ ८२ ॥

अथ वन्ध्यापुत्रजन्म

क्षीरातिबलायष्टिघृतबलाशर्करार्तवे काले ।
अवलिह्य संप्रसूते वन्ध्या लोकेश्वरं पुत्रम् ॥८३॥

भाषार्थ–बन्ध्या स्त्रीको पुत्र प्राप्त प्रयोग । सहदेई, मुरेठी, आरइन सब औषधियोंको गौके दुग्ध तथा शर्करामें मिश्रितकर अवलेह बनाय ऋतुकाल अर्थात् मासिक धर्मके समय स्त्री सेवन करे तो बन्ध्या स्त्री भी लोकेश्वर पुत्रको पैदा करे अन्य स्त्रीका तो कथन ही क्या है ॥ ८३ ॥

अश्वत्थतरुसमुत्थं बन्दाकं संप्रगृह्य रेवत्याम् ।
बद्धेन तेन पाणौ बन्ध्या गर्भंप्रगृह्णाति ॥ ८४ ॥

भाषार्थ–पीपलके वृक्षपै पैदा हुए बन्दाकको रेवती नक्षत्रके दिन कुमारी कन्याके काते हुए डोरेमें बांधकर जो स्त्री स्वहस्त में धारण करे तो बन्ध्या भी क्यों न हो तथापि गर्भको प्राप्त होय । बृक्षके ऊपर जो बृक्ष पैदा हो जाता है उसको बन्दाक कहते हैं, लोकभाषामें बन्दा भी कहते हैं । प्रयोग समय इसका चार अंगुल टुकडा लेना चाहिये ॥ ८४ ॥

व्याघ्रक्षतभवपिशितैर्भ्रमरैर्दध्युत्पलान्वितैः कुण्डे ।
षाण्मासप्रमाणधरं सप्ताहाद्व्याघ्रमिथुनं स्यात् ॥८५॥

भाषार्थ–दो भ्रमरोंको व्याघ्रके रुधिर तथा मांस और दधि विकार, उत्पल चूर्ण इन औषधियोंमेंसे प्रलिप्त कर कुण्डमें स्थापन करदे तो एक सप्ताहके पश्चात् उक्त भ्रमर जीवित षाण्मासिक व्याघ्रद्वन्द्व (जोडा) के स्वरूपको प्राप्त होंगे। उत्पल कुसुमविशेष ॥ ८५ ॥

मनुष्यदर्शनम्

मिथुनमलंरुधिरमैन्द्रियं कर्णाक्षिमलं प्रमथ्य तत्पयसा।
हुडुसाकृतिसंवृत्तस्तैर्नरमिथुनं त्रिसप्ताहात् ॥ ८६ ॥

भाषार्थ–स्त्री पुरुषोंके शरीर, नाक, कान, नेत्र इनका मल और शुक्र इन सब मलोंको एकत्रित कर नारीके दुग्धमें मथकर पूर्ववत् कुण्डमें स्थापनकर मेषके चर्मसे कुण्डके मुखको मढ़देय तो २१ दिवसके पश्चात् एक मनुष्यद्वन्द्व उक्त कुण्डसे उत्पन्न होगा ॥ ८६ ॥

ललनानितम्बबद्धंमातुलमूलं निवारयत्यग्रे । नित्यं
सुरतनिषेवणकाले गर्भं सपुष्पकं दृष्टम् ॥ ८७ ॥

भाषार्थ–सुरतकालके पूर्व यदि धतूरेकी जड स्त्रीके कटिमें बांधी जाय तो गर्भपात होय अथवा सुरत समयमें ही बांधी जाय तो भी गर्भपात होय यह प्रयोग दृष्ट अर्थात् अनुभूत है ॥ ८७ ॥

संभक्ष्य यथाकाले पुराणघृतमात्रमार्तवे वापि । अनिशं सुरतासक्ता रामागर्भन्न गृह्णाति ॥ ८८ ॥

भाषार्थ—यथाकाल अथवा ऋतु समय पुराने गौके घृतको यदि स्त्री भक्षण करे तो यथेच्छ सुरतके करनेसे भी स्त्री गर्भ-को प्राप्त न हो ।। ८८ ।।

धात्र्यंजनस्य चूर्णं पीत्वा शीतेन वारिणा पुष्ये । गर्भर्तुभीतिरहिता विचरतु कामातुरा रण्डा ॥८९॥

भाषार्थ—आमलक चूर्ण, सुरमा इन दोनोंको मिलाकर पुष्प नक्षत्रमें यदि विधवा स्त्री ठंडे जलके साथ सेवन करे तो गर्भ और ऋतुको प्राप्त न हो, किन्तु गर्भ भयसे शून्य होकर यथेच्छ गमन करे ।। ८९ ।।

सदलक्तकसुरगोपकपिलाघृतसंप्रसाधितोदीपः प्रज्व-लति यत्र भवने वराङ्गभंगो न जातु सर्वस्य ॥९०॥

भाषार्थ—लाखका रस, इन्द्रगोप, कपिला गौका घृत इन तीनों वस्तुओंको एकत्रित कर यदि दीपकको प्रज्वलित कर सुरतशालामें स्थापन करे तो सुरत समय वराङ्ग भंग न हो ।। ९० ।।

श्वेतार्कतूलवर्त्या वराहमेदःप्रदिग्धया दीपः । स्तब्धं पुरुषवरांगं धारयति च निशीथिनी सर्वम् ॥९१॥

भाषार्थ—श्वेत आकके बृक्षकी रुईकी बत्तिका बनाकर शूकर की चर्बीमें भिगोकर सुतशालामें दीपक प्रज्वलित करे तो

सम्पूर्ण रात्रितक सुरत करनेपर भी वरांग भंग न हो किन्तु स्तब्धता अधिक हो ।। ९१ ।।

बृहतीसितसिद्धार्थव्याघ्रीवचोग्रगंधयासहितम् । एभिः प्रलिप्तपुंसः प्रभवति लिङ्गं हयस्येव ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—बृहती (बडी कटेरी) श्वेत सरसों, बच, उग्र, गन्धा (असगंध) इन सब औषधियोंके चूर्णको पानीमें पीसकर मनुष्य गुप्त स्थानमें लगावे तो उक्त स्थान अश्ववत् दृढ़ हो जाय ।। ९२ ।।

घृतमाक्षिकयुत(तिल) । तैलं बृहतिफलं शुकमातमगुप्ता च । एभिर्वराङ्गवृद्धिः सप्तदिनं ताम्रभाण्डपर्युषितैः ९३

भाषार्थ—गोघृत, शहत, तिलोंका तेल, बृहतीफल, शुकपारा इन सब औषधियोंको समान भाग ले चूर्णकर सात दिन तक ताम्र पात्रमें पर्युषित कर यदि वरांग स्थानमें लगावे तो बृद्धि होय ।। ९३ ।।

सुरसः करञ्जयुक्तः सितमार्गणपुष्पिकामूलम् । वदनविवरान्तरस्थं स्तम्भयति नरेच्छया बीजम् ॥९४॥

भाषार्थ—कंजुआ, पारद, पुष्पिका मूल, इन तीनों औषधियों को एकत्रित कर वटिका वनाय यदि मुख बिवरमें स्थापन करे तो भनुष्यकी इच्छापूर्वक शुक्रदार्ढिमा होय ।। ९४ ।

गोमायुगीर्णजीर्णे बदरास्थिक्षीरकीटसंयुक्तः । धारयति पुरुषबीजं कटितटबद्धं खरस्य पुच्छरुहै ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—गीदडके गुदामार्गसे निकली बेरकी गुठलीको क्षीर कीटसे युक्तकर गर्धबके पूछके बालोंसे यदि मनुष्य कटिभागमें बांध लेंय तो शुक्रदार्ढ़िमा होय ॥ ९५ ॥

षडंघ्रिदेहचूर्णः स्वरःस्रजर्याः सिफासमायुक्तैः । दिवसकरतूलवर्त्या यो दीपः शुक्ररोधकः पुंसाम् ॥९६॥

भा० भ्रमरचूर्ण, दीर्घ शाखा मूलसे युक्तकर आकबृक्षकी रुईकी बत्ती बनाकर यदि चित्रशालामें दीपक प्रज्वलित किया जाय तो शुक्र दार्ढिमा होय ॥ ९६ ॥

आजं वज्रीक्षीरं गव्यघृतं चरणयुगललेपेन । स्तम्भयति पुरुषशुक्रं योगोयं यामिनीं सकलाम् ॥९७॥

भाषार्थ बकरीका दूध, थुहरका दूध इनको गौके घृतमें मिश्रित कर यदि चरणतलमें लेप करे तो सम्पूर्ण रात्रितक शुक्र दार्ढिमा रहे किन्तु पात न हो ॥ ९७ ॥

वरांगशूलकरणम्

सार्द्रं क्षितिरन्ध्रगतं स्त्रीवर्चो वृश्चिकालसंविद्धम् । घोरं वराङ्गदुःखं विसृजति तस्योद्धृते शं स्यात् ॥९८॥

भाषार्थ वराङ्ग शूल उत्पत्ति कही जाती है । गीले स्त्रीके

आर्तवको बिच्छूके डंकमें मिश्रितकर यदि भूमिमें गाड़ देय तो स्त्रीके वराङ्गमें शूल उत्पन्न होय, यदि शान्ति करना स्वीकार होय तो भूमिके मध्यसे उक्त वस्तुको निकाल लेय ॥९८॥

कुष्टकरणम्

कुष्टमरातौ जनयति सप्तदिनं भुजगवदनपर्युषिता । गुञ्जाथ भवनगोधा यावत् क्वाथंप्रिया लजं च पिवेत् ॥ ९९ ॥

भाषार्थ–अब कुष्ठकरण कहा जाता है। टली अथवा गोधा (छपकली) को सात दिनतक कृष्णसर्पके मुखमें स्थापन करदेय तत्पश्चात् निकालकर यदि शत्रु आदि व्यक्तिको खानपानमें प्रदान करें तो उक्त व्यक्तिके शरीरमें कुष्ठ रोग प्राप्त होगा, "शान्ति" तीन दिनतक प्रियाल वृक्षके पञ्चाङ्ग क्वाथको सेवन करे तो कुष्ठ शान्ति होय ॥ ९९ ॥

काकधातोद्वेगः

काकपत्रे विलिखितं द्विकहृदयक्षतजेन काकपक्षलेखन्या । यन्नाम द्विकसंघाः खादन्ति निरंतरं तमिह ॥ १०० ॥

भाषार्थ–काक पक्षकी लेखनी (कलम) बनाकर काकपत्रके ऊपर काक (कौवा) रुधिरसे जिस व्यक्तिके नामा-

क्षरोंको लिखे तो निरन्तर उस व्यक्तिको काक भक्षण करेंगे अर्थात् ठोंगें मार २ दुःख देंगे ।। १०० ।।

शोणहृदयरुधिरेण चूतदले यस्य नाम विन्यस्तम् ।
तद्वच्चैतन्निहितं काकैः संभक्ष्यते सोपि ॥१०१॥

भाषार्थ–आमके पत्तेके ऊपर काले काकके रुधिरसे जिस व्यक्तिके नामको लिख भूमिमें गाडदेय तो उस व्यक्तिको काक ठोंगें मार २ कर भक्षण करेंगे अर्थात् काटेंगे ।। १०१ ।।

गर्भस्तम्भनप्रयोगः

भल्लकलिखितो हुडवित्प्रसवन्त्याः स्तम्भनं करोत्युच्चैः ।
गर्भस्य सपदि नार्यास्तन्नाम विदार्भितंसिद्धः ॥१०२॥

भाषार्थ–अब गर्भस्तम्भप्रयोग कहा जाता है । यदि प्रसवोन्मुखी (जिसके बालक पैदा होनेवाला हो) स्त्रीका गर्भस्तम्भन करना होय तो सरैयामें हुडवित् इन अक्षरोंसे पुटितकर साध्य स्त्रीका नाम लिख भूमिमें गाडदेय तो निश्चय गर्भस्तम्भन होय, यह भल्लक लिखित योग है, इसको सत्यही समझना यदि गर्भ मोक्षण करना हो तो उक्त सरैयांको उखेड लेय१०२

दीपस्थैर्यम्

कोशाम्रतैलदीपः प्रज्वलति प्रवहति प्रचण्डेऽपि ।
मरुति सति निश्चयमेव स्फुरन्महारत्नज्वालेव ॥१०३॥

भाषार्थ—अब दीपस्थैर्यता कही जाती है। यदि आम्रतेलसे दीपकको प्रज्वलित कर (बालकर) प्रचंड हवा (आंधी) में रख दिया जाय तो भी न बुझे किन्तु तीक्ष्ण (तेज) कान्तिवाले हीरकादि रत्नोंके तुल्य स्थिर रोशनीको प्रकाश करे ॥ १०३ ॥

विषापहरणम्

रविशलभभवनगोधावर्तश्चमनःशिला तथा । पथ्या
वृश्चिकविषं विनश्यत्येभिर्दंशस्य लेपे च ॥ १०४ ॥

भाषार्थ बिच्छूके विष उतारनेका प्रयोग । अर्कवृक्ष (आकका पेड) के कीडे छिपकलीकी विष्ठा, मैनशिल हर, इन सब औषधियोंको मिश्रित कर पानीमें पीस यदि बिच्छूके काटे स्थानमें लेप करदेय तो बिच्छूका विष शीघ्र उक्त स्थानसे दूर होय ॥ १०४ ॥

पयसा दिवाकरस्य पलाशतरोर्भावितैर्मुहुर्बीजैः ।
गुटिका कृता प्रयुक्ता वृश्चिकविषमाशु संहरति ॥ १०५॥

भाषार्थ ढाकके बीजोंके चूर्णको आकके दूधमें भावना देकर बटी बनाले, इस बटीके लेप करनेसे बिच्छूका विष दूर हो जाता है ॥ १०५ ॥

अंकोलमूलतैलं दाडिमिजंब्वोश्च मूलतैलेन । मधुशर्क-रासमांशैर्वृश्चिकसंक्रामिणीगुटिका ॥ १०६ ॥

भाषार्थ—अंकोलकी जड, दाडिमीकी जड, जामनकी जड, और इन तीनोंके तेलसमांश (बराबर) शहत और शर्करा मिलाकर गुटिका बनाय यदि सेवन करे तो बिच्छूका विष रुक जाय अर्थात् अन्य स्थानोंमें (काटेसे दूसरी जगह) न चढे ॥१०६॥

मेघादिजलस्तम्भनाधिकारः

दवदहनभस्मना तनुमवलिप्य स्तब्धबीजचूर्णेन । जल-धरधारापातैः पर्यटति सति न कुर्वुरो भवति ॥ १०७॥

भाषार्थ—वनाग्निकी भस्मको स्तब्धबीजके चूर्णमें मिश्रितकर यदि शरीरमें लेप करे तो अत्यन्त मेघधाराकी वर्षामें भी स्वेच्छित (इच्छाके माफिक) गमन करे किन्तु शरीरमें भस्म नहीं घुलता ॥ १०७ ॥

पुरवंशजकृतधूपो बोधितरुत्वग्रसेन चाभ्यक्तः असुर-सुरनरैरपि न दृश्यते संस्थितपटः सार्द्रः ॥१०८॥

भाषार्थ—गूगल, वंशलोचन इन दोनोंको न्यग्रोध वृक्षकी त्वचा (छाल) के रसमें आर्द्र (गीला) कर यदि धूप दी जाय तो वर्तमान पट असुर (राक्षस) सुर (देवता) मनुष्य इनको भी न दिखाई दें ॥ १०८ ॥

दिनसप्तकं हि भोज्ये तालशिलेऽनाहारिणे मयूराय।
तद्गूथेन विलिप्तं न दृश्यते करतलस्थितं द्रव्यम् १०९

भाषार्थ–अनाहारी (भूखे) मोरको सात दिन तक हरिताल और मैनशिल भोजन करावे तत्पश्चात् मैनशिल और हरतालके भक्षण करनेसे उत्पन्न हुए विष्ठासे लिप्तकर यदि किसी वस्तुको हाथकी हथेली पर रक्खे तो वह वस्तु अदृश्य होय अर्थात् किसीको न दीखे ॥ १०९ ॥

त्रिदिनोषितगिरिकच्छपगीर्णं जीर्णं च तालमादाय।
तेन करगर्भलेपादाभरणान्याक्षिपेद्धस्तात् ॥११०॥

भाषार्थ–तीन दिनके भूखे गिरिकच्छप (कृकलास) को हरताल भोजन करावे तत्पश्चात् विष्टा द्वारा निकली हुई हरतालसे जिस व्यक्तिके हस्तादिकोंमें लेप किया जाय तो उक्त व्यक्तिके आभूषणादि अनायाससे निकालनेको समर्थ होंगे किन्तु उस व्यक्तिको लक्षित न होगा ॥ ११० ॥

प्रतिमाकर्षणम्

विषमुरुबूकबीजं भुजगपलं भवनगोधिकामेदः शाखा-
मृगास्थियुक्तैः प्रतिमाकर्षो भवत्येभिः ॥ १११ ॥

भाषार्थ–अब प्रतिमाकर्षण कहा जाता है। विष (तेलिया) अंडके बीज, सर्पका मांस, छिपकलीका मांस, अंकोलके बीज,

बानरकी हड्डी इन सब औषधियोंको एकत्रित कर जलमें पीस यदि हस्ततलमें लेप करे तो स्पर्श मात्रसेही देवतादिकोंकी प्रतिमाका आकर्षण होगा ॥ १११ ॥

जीवहरपारिजातकतालैर्हालाहलस्य पुच्छश्च । अंकोलतैलयुक्तैराकर्षो भवति शंखशुक्तीनाम् ॥११२॥

भाषार्थ–अब शंख शुक्तियोंका आकर्षण कहा जाता है। विष, पारिजात वृक्षके पुष्प, हरिताल, सर्पकी पूंछ इन सबको एकत्रित कर अंकोलके तेलमें पीसकर यदि हस्ततलमें लेप करे तो शंख शुक्तियोंका आकर्षण होय ॥ ११२ ॥

भगसंकोचनाधिकारः

गिरिकर्णिकेन्द्रगोपकशतांघ्रिकाख्यसहस्रचरणश्च ।
इतिजनितरेणुराजो वराङ्गरंध्राणि रोहयति॥११३॥

भाषार्थ–गिरिकर्णिका, (मल्ली) इन्द्रगोप शतपादिका, आकका वृक्ष इन सम्पूर्ण औषधियोंको एकत्रित कर चूर्ण बनाय यदि बराङ्ग स्थानमें मर्दन करे तो उक्त स्थान संकुचित होय ॥ ११३ ॥

ललना न भवति गम्या विचलद्गोगवलरेणुरतिलेपात् ।
ऊर्ध्वगविषाणलेपात्प्याति पूर्वां तथा प्रकृतिम् ११४

भाषार्थ—चलायमान अर्थात् हिलते हुए गौके शृङ्गके नीचेके चूर्णको यदि स्त्री वराङ्ग स्थानमें मर्दन करे तो उक्त स्थानके संकुचित होनेसे गमन योग्य न हो। यदि गौ शृङ्गके ऊर्ध्व भागके चूर्णको मर्दन करे तो पूर्ववत् वरांग स्थान होय ॥ ११४॥

वरांगरक्तप्रवाहः

प्रमदा या लंघयति द्विमुखाहिक्षतजरञ्जितं सूत्रम्।
प्रगलति वरांगकुहरात्क्षयकरक्षतजनिकरस्तस्याः ११५

भाषार्थ—जो गर्भिणी स्त्री द्विमुखी सर्पके रुधिरसे रंगे हुए सूत्र (डोरा) को उल्लंघन करे तो उस स्त्रीके वरांग कुहरसे अर्थात् गर्भ स्थानसे क्षयकारी रुधिरका प्रवाह होगा ॥ ११५॥

महिषरुधिरप्रदिग्धः पञ्चांगो षोडशांशविषयुक्तः।
कनकवृक्षभवधूपो रात्रौ चेष्टाहरः पुंसाम् ॥ ११६॥

भाषार्थ—१५ भाग धतूरेका पचांग चूर्ण और षोडश (१६) भाग विष इन दोनोंको महिष रुधिरमें भावना देकर छाया में शुष्क कर लेय पुनः उक्त द्रव्यसे यदि रात्रिसमय धूपका प्रयोग करे तो पुरुष निश्चेष्टित अर्थात् काष्ठकी पुतलीके तुल्य स्थिर भावको प्राप्त होय ॥ ११६॥

नरकाणीकरणम्

रजनीसमये दीपो निम्बजवन्दाकरेणुसंयुक्तः । प्रज्व-
लति च यत्र स्थाने भवति काणा नरास्तत्र॥११७॥

भाषार्थ–दीप प्रज्वालन करनेसे मनुष्यको काणत्वकी प्राप्ति । निम्ब वृक्षके स्कन्ध भागमें जो छोटे २ निम्ब वृक्ष पैदा हो जाते हैं उनको निम्बजवन्दाक वृक्ष कहते हैं । वन्दाक पंचांगके चूर्णसे मिश्रितकर यदि रात्रि समय दीपक प्रज्वलित किया जाय तो देखनेवाले मनुष्य काणत्व भावको प्राप्त होंय अर्थात् एक नेत्रसे शून्य प्रतीत होंय ॥ ११७ ॥

अन्धीकरणबोधः

गुञ्जायाः फलमूलैर्मोचाकुसुमैश्च दृष्टिहा धूपः । पयसः
पातात्स्वस्थो भवति पुमान्मधुराभराज्यधूपाद्वा ॥११८॥

भाषार्थ–अन्धीकरण कहा जाता है । गुंजा फल, चोंटली, और गुंजामूल, धातकी पुष्प इन औषधियोंको एकत्रितकर जिस व्यक्तिको धूप प्रयोग करे तो वह व्यक्ति अन्धभावको प्राप्त होय । दुग्धके पान करनेसे पूर्ववत् होय अथवा मधु गोघृत इनको मिश्रित कर पुन: धूपका प्रयोग करे तो स्वस्थता प्राप्त होय ॥ ११८ ॥

कलहकरणम्

निदघायत्र भवने मध्यंदिनलुठितखरमाहिषरेणुः। शाम्यति तत्र न कलहः सुरभैरवो वामपाणिनानित्यम् ॥ ११९ ॥

भाषार्थ—दुपहरकालमें धूलिमें लोटे हुये गर्दभ और भैंसेके शरीरके नीचेकी धूलिको वाम हस्तसे उठाकर जिस व्यक्तिके गृहमें फेंक दे तो उस व्यक्तिके गृहसे किसी समय कलह (लडाई) शान्त न हो ॥ ११९ ॥

पुष्ये यवैः कपाले निक्षिप्तैः शस्त्रशूलभिन्नस्य। आविकपयोभिषिक्तैस्तत्फलमाला नरं निगूहयति १२०

भाषार्थ—पुष्यनक्षत्रको शस्त्रभिन्न (शस्त्रसे कटे हुए) पुरुषके कपालमें यवोंके बपन (बोना) कर बकरीके दूधसे सींचे तत्पश्चात् उक्त यवोंकी माला बनाकर जिस व्यक्तिके गलेमें डाले तो वह व्यक्ति अदृश्य अर्थात् किसीको न दीखे ॥ १२० ॥

अथ मृन्मयगजमदः

मृद्वारणकुम्भस्थलरंध्रात्पिचुमन्दसर्जनिर्यासम्। दिनकरकिरणस्पर्शान्मदगजलीलां विधास्यति ॥१२१॥

भाषार्थ-मृत्तिकासे निर्माण किये हुए गजके गण्डस्थलमें स्थित छिद्रमें पिचुमन्द सर्ज निर्यास यह दो औषधियां रखकर सूर्यकी किरणोंके स्पर्श करानेसे अर्थात् धूपमें रखनेसे उक्त गज मदवाले गजकी लीलाको धारण करेगा ॥ १२१ ॥

प्रविलिप्य वामपादं त्रिकटुकसंयुक्तरासभीजरया ।
त्यजति फलकुसुमनिकरं ताडितमात्रो द्रुमस्तेन १२२

भाषार्थ-त्रिकटु (सोंठ मिर्च पीपल) गधीकी जरायु इन सबको एकत्रित कर बाम पादमें लेपकर यदि जिस किसी वृक्षमें ठोकर मारे तो तत्क्षण ताड़न मात्रहीसे उक्त वृक्षके फल, फूल, पत्ते, सब पृथिवीमें गिर पड़ेंगे किन्तु ठुण्ठ वृक्ष बाकी रह जायगा ॥ १२२ ॥

स्पृष्टः करकमलेन त्रिकटुकसमांजरायुलिप्तेन। मुञ्चति फलकुसुमचयं वृक्षः खलु कामवृक्ष इव ॥ १२३ ॥

भाषार्थ-सोंठ, मिर्च, पीपल, कुतीकी जरायु इन सबको एकत्रित कर निज हस्तमें प्रलेप कर जिस वृक्षको स्पर्श करे तो वह वृक्ष स्पर्श मात्रसेही फल, फूल प्रदान करे जैसे कि कल्पवृक्ष इच्छामात्रके होते ही स्वयं कामनादिकोंका प्रदान करता है ॥ १२३ ॥

दुग्धस्य घृतोत्पादनम्

दिनकरदुग्धाभ्यक्ते कुम्भेऽस्मिन्घृतपलैकसंयुक्तम् ।
क्षीरं यावत्सोष्णं तावद्विनिवेशितं सर्पिः ॥१२४॥

भाषार्थ–नवीन (नया) घटको भीतरसे आकके दुग्धसे लिप्त कर एवं सात वार छायामें सुखाकर एक पल परिमाण घृतसे युक्त कर गर्म दुग्धको उक्त घटके अन्दर डाल देय तो उक्त दूध गोघृतके तुल्य प्रतीत (मालूम होना) होगा ॥१२४॥

जलतक्रीकरणम्

प्रत्यग्रकुम्भगर्भे भानुक्षीरेण भावयेद्बहुशः । प्रक्षिप्त-
मात्रमंभो भवति हि तस्मिन्नवं तक्रम् ॥ १२५ ॥

भाषार्थ–जलको मट्ठा बनानेकी विधि कही जाती है । नवीन घटको सात वार आकके दुधसे लिप्त कर छायामें शुष्क करले तत्पश्चात् उक्त घटमें जल भरदे तो उक्त जल नवीन तक्र (मट्ठा) के सदृश (बराबर) प्रतीत होगा ॥१२५॥

तक्रस्य दधिकरणम्

अर्कक्षीराभ्यक्ते तद्वच्छुष्के कपित्थफलगर्भः । चूर्णी-
कृतः प्रयुक्तस्तक्रं दधिभावमानयति ॥ १२६ ॥

भाषार्थ—मट्ठे से दधि बनानेकी विधि । पूर्ववत् घट क्रियाको करके तक्र भरकर ऊपरसे कपित्थ चूर्ण बुरकादे तो उक्त तक्र दधि हो जायगा ।। १२६ ।।

मृतसंजीवनम्

उपरतवशशुष्काणामारुष्कररसलिप्तपार्श्वाणाम् । शीताम्भसि मत्स्यानां भवति पुनर्जीवितं निमिषात् १२७

भाषार्थ—अब मृतसंजीवन प्रयोग कहा जाता है । मृत्युको प्राप्त होकर सूखे हुये मत्स्यों (मच्छियों) को भिलावें से लिप्त करके शीतल जलमें छोडदेय तो (उसी वक्त) उक्त मत्स्य जीवित होंगे ।। १२७ ।।

नरनारीगुह्यबंधमोक्षः

पुरुषांगनयोरचिराद्दीर्घग्रीवास्थिरन्ध्रनिक्षिप्तः । कुरुते वरांगबन्धं सुरते मृतपुरुषपार्श्वजः शंकुः ॥१२८॥

भाषार्थ—सुरतासक्त नरनारियोंका गुह्यबन्धमोक्ष कहा जाता है । मृतक पुरुष के पार्श्व (बगल) के शंकुको लेकर उष्ट्र ग्रीवाकी अस्थिके छिद्रमें प्रवेश करे तो सुरतासक्त नरनारीका वराङ्ग बन्धन होय यदि उक्त शंकु उष्ट्र ग्रीवास्थिसे अलग कर दिया जाय तो वरांग बंधन छूट जाय ।। १२८ ।।

अथासनबन्धः

सरिदुभयतटान्तमृदा सुरतातुरसारमेयरोमाणि। सर्वा-सनबन्धकरी गुटिकैषा कोलतैलसंयुक्ता ॥ १२९ ॥

भाषार्थ–आसन बन्ध कहा जाता है। सुरतासक्त कुक्कुर और कुक्कुरीके रोम, नदीके दोनों तटोंकी मृत्तिका इन सब को मिश्रित कर एक गुटिका बना जिस व्यक्तिके ऊपर प्रयोग करना स्वीकार होय उस व्यक्तिके नामको लेकर अंकोलाके तेलमें छोडदे तो वह मनुष्य जिस आसन अर्थात् घोडा, हाथी, ऊंट इत्यादिकों पर बैठा होगा तो वहीं बैठा रह जायगा किन्तु वहांसे उठ न सकेगा यदि उक्त गुटिका तेलमेंसे निकाल लीजायगी तो आसन मोक्ष हो जायगा। १२९॥

नयनयुगरश्मिमध्यकेन्द्रे हि चन्द्रमंडलाभ्यासात्। आविर्भवति नाराणामन्तर्ज्योतिस्तथान्धकारेऽपि ॥ १३० ॥

भाषार्थ–जो मनुष्य सावधान चित्त होकर नेत्र ज्योतिद्वारा चन्द्रमण्डलके अवलोकनका अभ्यास करते हैं उन मनुष्योंको अन्तरज्योति प्राप्त होती है कि किसके द्वारा मनुष्य अन्धकार में भी देखनेको समर्थ होता है ॥ १३० ॥

गुरुमुखतोऽधिगतं यच्छास्त्रान्तरश्च यन्मया ज्ञातम्।
अनुभवमार्गेनीत्वातन्मध्यात्किञ्चिदिह दृष्टम् ॥ १३१॥

भाषार्थ–जो मैंने गुरुमुखसे प्राप्त किया है। और जो कुछ शास्त्रोंके देखनेसे प्राप्त किया है उस सम्पूर्ण विषयको अनुभव सिद्ध करके इस योगमाला नाम ग्रन्थ द्वारा प्रकाश किया है ॥ १३१ ॥

आश्चर्य्यरत्नमाला नागार्जुनविरचितानुभवसिद्धा।
सकलजनहृदयदयिता समर्पिता सूत्रतो जयति १३२

भाषार्थ–सिद्धनागार्जुनके अनुभवसे विरचित (सिद्धनागार्जुनकी अजमाई हुई) आश्चर्यरत्नोंसे प्रकाशवाली छन्दसूत्र-आर्य्याछिन्दसे गुम्फित, यह योगरत्नमाला रसिक पुरुषोंको प्राणधारी दयिता (स्त्री) के तुल्य आनन्द देती हुई जयको प्राप्त होय ॥ १३२ ॥

आर्य्यप्रार्थना

यदशुद्धमिह निरूपितमार्य्यास्तत्क्षम्यतां प्रमादं मे।

कृत्वा विशोध्यतां यत्को नो विगलति प्रमादनिव-हेन ॥ १२३ ॥

भाषार्थ–अब ग्रन्थ समाप्ति समयमें आर्य पुरुषोंसे प्रार्थना की जाती है, हे आर्य्य पुरुषो ! यदि प्रमादवश मुझसे इस ग्रन्थमें कुछ अशुद्धि हो गई हो तो कृपापूर्वक क्षमाकर शुद्ध कर लो क्योंकि ऐसा कोई आर्य्य पुरुष नहीं है कि जिससे भूल (गलती) न होती हो ।। १३३ ।।

श्रीनृपविक्रमसमये द्वादशनवषड्भिरंकिते वर्षे। रचिता गुणाकरेण श्वेताम्बरभिक्षुणा विवृतिः ॥ १३४ ॥

भाषार्थ–यह योग रत्नमाला नाम ग्रन्थ श्वेताम्बर भिक्षुने १२९६ श्रीविक्रमके सम्वत्में बनायी थी ।। १३४ ।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।।

पुस्तकें मिलने के स्थान

१) खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४.

२) खेमराज श्रीकृष्णदास,
६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट
पुणे - ४११ ०१३.

३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि. ठाणे - महाराष्ट्र)

४) खेमराज श्रीकृष्णदास,
चौक - वाराणसी (उ.प्र.)